**अविद्या जो अहंकारु, भारी लग्गो जीअ खे,**
**मने वेठो पाणहीं, अण हूंदो सन्सारु,**
**मिली साध-संगति सां, करे न सुधु वीचारु**
**साखी सिरजणहारु, सामी ड्रिसे कीनकी.**

***सामीजी कहते हैं, हमारे जी (मन) को अविद्या (अज्ञान, माया) से अहंकार हो गया है अर्थात् अविद्या के कारण मनुष्य में अहंकार का भाव आ गया है। परिणामस्वरूप वह इस अविद्यमान संसार को अपने आप सत्य मान बैठा है। अज्ञान के वशीभूत होने के कारण उसकी बुद्धि मलिन हो गयी है। फलतः वह साधुजनों के संग में, सत्संग में बैठकर कभी शुद्ध विचार नहीं करता। अविद्या, अज्ञान अथवा माया के आवरण के कारण वह साक्षी, सृजनहार सृष्टिकर्ता (ब्रह्म, परमात्मा) को नहीं देखता।***

अविद्या का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, अज्ञान, मोह। जिसके कारण माया का उद्‌भव होता है, उसे 'अविद्या' कहा जाता है। अविद्या सभी जीवों में, मनुष्यों में विद्यमान रहती है। अपवाद रूप में विरला कोई ज्ञानी पुरुष इस अविद्या से मुक्त होता है। अविद्या अथवा अज्ञान माया का वह आवरण/पर्दा है, जिसके माध्यम से माया मनुष्य/जीव के आत्मस्वरूप को ढँक देती है। दूसरे शब्दों में, अविद्या वह शक्ति है, जो कि शुद्ध ज्ञान स्वरूप चेतन को ढाँकती है। अविद्या की वृत्तियों के कारण जीव/मनुष्य अपने स्वरूप को पहचान नहीं पाता। वह अपने शरीर और इंद्रियों को 'मैं' समझने लगता है। उसमें महामोह की, भोग भोगने की इच्छा रहती है। भोगों की इच्छा पूरी न होने पर वह क्रोध से भर जाता है। अविद्या या माया के अधीन होने से जीव संसार के बंधनों में फँस जाता है। परिणामस्वरूप वह परमात्मा को भुलाकर इस चल-अचल संसार को ही सत्य समझने लगता है। अर्थात् इस मिथ्या जगत को सत्य समझ लेना अज्ञान है। अविद्या के कारण वह अपना विवेक खो बैठता है और परिणामस्वरूप वह संतों की संगति में रहकर न शुद्ध विचार करता है और न ही आत्मस्वरूप को, परमात्मा को पहचानने का यत्न करता है। सामीजी के विचारानुसार अविद्या का भूत सभी जीवों को नचा रहा है। अविद्या से अभिमान में डूबा हुआ मनुष्य परमात्मा को देख नहीं पाता।

■